ॐ

# श्रीमद् राजचंद्र

(मूल गुजरातीका हिंदी अनुवाद)

**जिसने आत्माको जाना उसने सब जाना।**

—निर्ग्रंथ प्रवचन

अनुवादक

**हंसराज जैन**

पुस्तक प्राप्ति स्थल
**श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल**
चौकशी चेम्बर्स, दूसरा माला,
खारा कुवा, जवेरी बाजार,
बम्बई–४००००२

श्रीमद राजचंद्र आश्रम
स्टे अगास,
पोस्ट बोरिया,
पीन ३८८१३०
गुजरात

प्रकाशक
मनुभाई भ मोदी, अध्यक्ष
श्रीमद् राजचद्र आश्रम,
स्टे अगाम, पो बोरिया–३८८१३०
वाया–आणद (गुजरात)

तृतीय सस्करण
प्रतियाँ ५०००
ईस्वी सन् १९९१
विक्रम सवत् २०४७
वीर सवत् २५१७

ॐ
अहो !
सर्वोत्कृष्ट शात रसमय सन्मार्ग–
अहो !
उस सर्वोत्कृष्ट शात रसप्रधान मार्गके
मूल सर्वज्ञदेव, —
अहो !
उस सर्वोत्कृष्ट शातरसको जिन्होंने सुप्रतीत कराया
ऐसे परमकृपालु सद्गुरुदेव—
इस विश्वमें सर्वकाल
आप
जयवत रहे, जयवत रहे।
—सस्मरण पोथी ३/२३

मुद्रक
अनामिका ट्रेडिग क
भवानी शकर रोड,
दादर, मुबई–४०० ०२८
फोन ४३० ७२ ८६

# श्रीमद् राजचंद्र विचाररत्न

"परम पुरुष प्रभु सद्गुरु, परम ज्ञान सुखधाम।
जेणे आप्युं भान निज, तेने सदा प्रणाम॥" —आक २६६

*

"सर्व भावथी औदासीन्यवृत्ति करी,
मात्र देह ते संयमहेतु होय जो।
अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहीं,
देहे पण किंचित् मूर्च्छा नव जोय जो॥
अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?" —आक ७३८ गाथा २

*

"जिसके एक रोममे किंचित् भी अज्ञान, मोह या असमाधि नही रही उस सत्पुरुषके वचन और बोधके लिये कुछ भी नही कहते हुए, उसीके वचनमे प्रशस्तभावसे पुनः पुनः प्रसक्त होना, यह भी अपना सर्वोत्तम श्रेय है।

कैसी इसकी शैली! जहाँ आत्माके विकारमय होनेका अनतांश भी नही रहा है। शुद्ध, स्फटिक, फेन और चद्रसे भी उज्ज्वल शुक्लध्यानकी श्रेणीसे प्रवाहरूपसे निकलते हुए उस निर्ग्रंथके पवित्र वचनोकी मुझे और आपको त्रिकाल श्रद्धा रहे।

यही परमात्माके योगबलके आगे प्रयाचना।" —आक ५२

*

"अनन्तकालसे जो ज्ञान भवहेतु होता था, उस ज्ञानको एक समयमात्रमे जात्यतर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शनको नमस्कार।" —आक ८३९

*

"जगतके अभिप्रायकी ओर देखकर जीवने पदार्थका बोध पाया है। ज्ञानीके अभिप्रायकी ओर देखकर पाया नही है। जिस जीवने ज्ञानीके अभिप्रायसे बोध पाया है उस जीवको सम्यग्दर्शन होता है।" —आक ३५८

*

"विचारवानको देह छूटने सम्बन्धी हर्षविषाद योग्य नही है। आत्मपरिणामकी विभावता ही हानि और वही मुख्य मरण है। स्वभावसन्मुखता तथा उसकी दृढ इच्छा भी उस हर्षविषादको दूर करती है।" —आक ६०५

*

"श्री सद्गुरुने कहा है ऐसे निर्ग्रंथमार्गका सदैव आश्रय रहे।

मैं देहादिस्वरूप नही हूँ, और देह, स्त्री, पुत्र आदि कोई भी मेरे नही हैं, शुद्ध चैतन्य स्वरूप, अविनाशी ऐसा मै आत्मा हूँ, इस प्रकार आत्मभावना करते हुए रागद्वेषका क्षय होता है।" —आक ६९२

*

"अनन्तवार देहके लिये आत्माका उपयोग किया है। जिस देहका आत्माके लिये उपयोग होगा उस देहमे आत्मविचारका आविर्भाव होने योग्य जानकर, सर्व देहार्थकी कल्पना छोड़कर, एकमात्र आत्मार्थमे ही उसका उपयोग करना, ऐसा निश्चय मुमुक्षुजीवको अवश्य करना चाहिये।" —आक ७१९

*

"विषयसे जिसकी इद्रियाँ आर्त्त है उसे शीतल आत्मसुख, आत्मतत्त्व कहाँसे प्रतीतिमे आयेगा ?
'जहाँ सर्वोत्कृष्ट शुद्धि वहाँ सर्वोत्कृष्ट सिद्धि।'
हे आर्यजनो ! इस परम वाक्यका आत्मभावसे आप अनुभव करे।" —आक ८३२

*

"लोकसज्ञा जिसकी जिंदगीका लक्ष्यबिंदु है वह जिंदगी चाहे जैसी श्रीमतता, सत्ता या कुटुम्ब परिवार आदिके योगवाली हो तो भी वह दु खका ही हेतु है। आत्मशाति जिस जिंदगीका लक्ष्यबिंदु है वह जिंदगी चाहे तो एकाकी, निर्धन और निर्वस्त्र हो तो भी परम समाधिका स्थान है।" —आक ९४९

*

"श्रीकृष्ण महात्मा थे और ज्ञानी होते हुए भी उदयभावसे ससारमे रहे थे, इतना जैन शास्त्रसे भी जाना जा सकता है, और यह यथार्थ है; तथापि उनकी गतिके विषयमे जो भेद बताया है उसका भिन्न कारण है। और भागवत आदिमे तो जिन श्रीकृष्णका वर्णन किया है वे तो परमात्मा ही हैं। परमात्माकी लीलाको महात्मा कृष्णके नामसे गाया है। और इस भागवत और इस कृष्णको यदि महापुरुषसे समझ ले तो जीव ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह बात हमे बहुत प्रिय है।" —आक २१८

*

"सबकी अपेक्षा वीतरागके वचनको संपूर्ण प्रतीतिका स्थान कहना योग्य है, क्योंकि जहाँ राग आदि दोषोका सपूर्ण क्षय होता है वहाँ संपूर्ण ज्ञानस्वभाव प्रगट होना योग्य है ऐसा नियम है।

श्री जिनेन्द्रमे सबकी अपेक्षा उत्कृष्ट वीतरागता होना सभव है, क्योंकि उनके वचन प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। जिस किसी पुरुषमे जितने अशमे वीतरागताका सभव है, उतने अशमे उस पुरुषका वाक्य मानने योग्य है।" —सस्मरण पोथी १/६१

*

"जैसे भगवान जिनेन्द्रने निरूपण किया है वैसे ही सर्व पदार्थका स्वरूप है।

भगवान जिनेन्द्रका उपदिष्ट आत्माका समाधिमार्ग श्री गुरुके अनुग्रहसे जानकर, परम प्रयत्नसे उसकी उपासना करे।" —सस्मरण पोथी २/२१

*

"सर्व प्रकारसे ज्ञानीकी शरणमे बुद्धि रखकर निर्भयताका, शोकरहितताका सेवन करनेकी शिक्षा श्री तीर्थंकर जैसोने दी है, और हम भी यही कहते हैं। किसी भी कारणसे इस संसारमे क्लेशित होना योग्य नही है। अविचार और अज्ञान ये सर्व क्लेशके, मोहके और अशुभगतिके कारण हैं। सद्विचार और आत्मज्ञान आत्मगतिके कारण हैं।" —आक ४६०

*

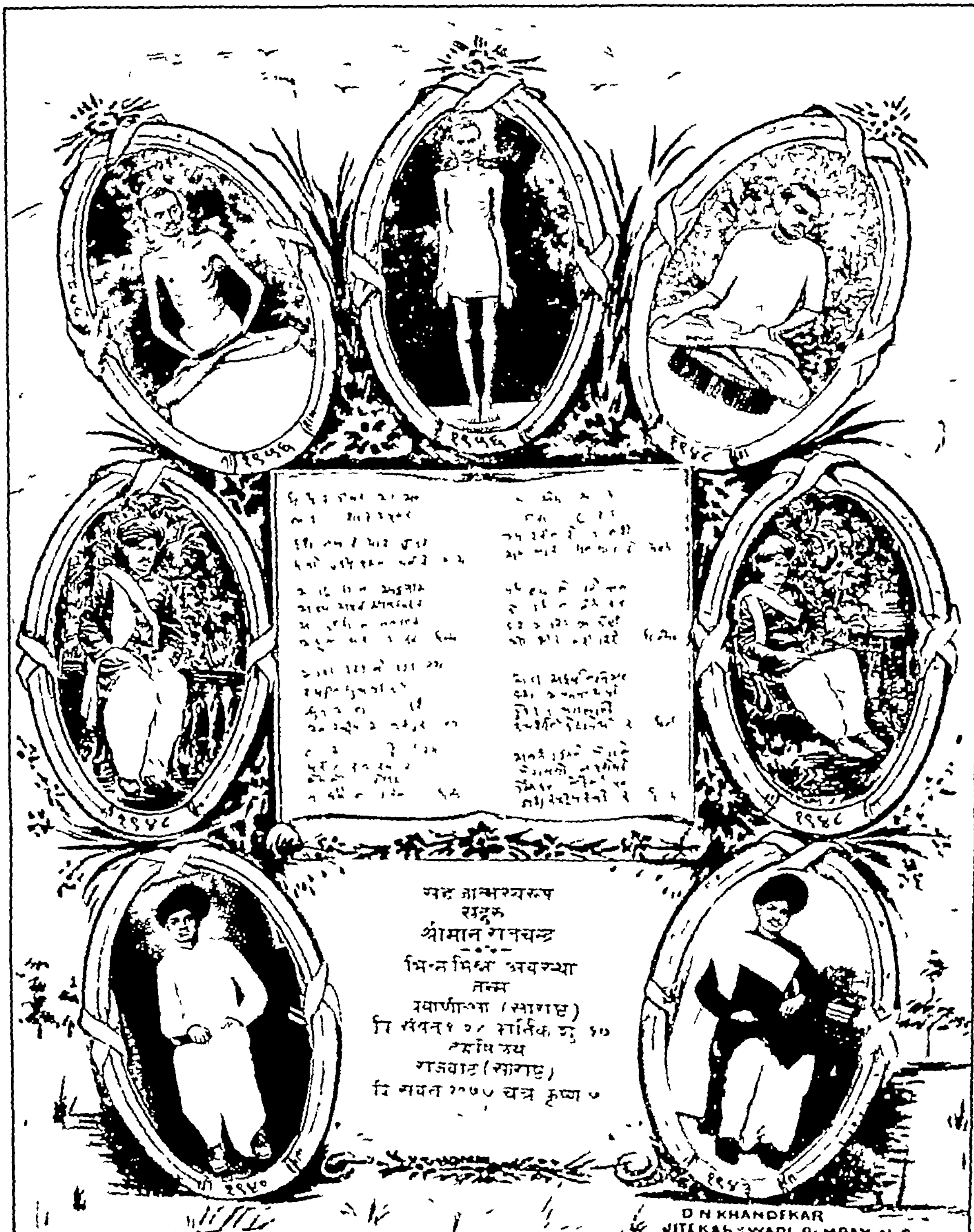


छ अवस्था

# प्रकाशकीय निवेदन

'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थ मूल गुजराती भाषामे है। इसका प्रथम हिन्दी अनुवाद प० जगदीशचन्द्र शास्त्री, एम० ए० कृत विक्रम संवत् १९४४ (ई० सन् १९३८) मे श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल द्वारा प्रकाशित हुआ था जो काफी समयसे अप्राप्य था। इस दौरान 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थका गुजरातीमे नवीन सशोधित परिर्वाधित संस्करण वि० स० २००७ मे इसी आश्रम द्वारा प्रकाशित हुआ जिसका हिन्दी अनुवाद स्वतंत्र रूपसे करनेकी आवश्यकता थी।

प्रसंगवशात् ललितपुरके प० परमेष्ठीदास जैनका आश्रममे आना हुआ। उनकी भावना एवं उत्साह देखकर उन्हे अनुवादका काम सौंपा गया। उन्होने आक ३७५ तक अनुवाद किया भी, परन्तु बादमे शारीरिक अस्वस्थताके कारण वे स्वेच्छासे इस अनुवादकी जिम्मेदारीसे मुक्त हुए। उसी अरसेमे संयोगवश श्री हंसराजजी जैनका परिचय हुआ और अनुवाद पूरा करनेके लिये उनसे कहा गया जिसे उन्होने सहर्ष एव सोत्साह मान्यकर, दृढ निष्ठा एव बड़े परिश्रमसे यह कार्य यथासम्भव शीघ्र ही पूरा कर दिया। संस्कृतमे एम० ए० होनेसे उनका सस्कृत भाषाका ज्ञान अच्छा था और मूल पजाबी होते हुए भी बरसोसे गुजरातमे रहनेसे उनका गुजराती भाषाका ज्ञान भी प्रशस्त था। इस प्रकार वि० स० २०३० मे इस ग्रन्थका सशोधित-परिर्वाधित प्रथम हिन्दी सस्करण श्रीमद् राजचन्द्र आश्रमके अन्तर्गत श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डलकी ओरसे दो भागोमे प्रगट हुआ।

तत्पश्चात् सभी प्रतियाँ बिक जानेसे इसके पुनर्मुद्रणकी आवश्यकता प्रतीत हुई परन्तु शीघ्र मुद्रणके कारण प्रथम सस्करणमे काफी अशुद्धियाँ रह गई थी तथा अमुक जगह वाक्याश छूट गये थे अत: अनुवादको फिरसे मूलके साथ मिलान करना अत्यत जरूरी था। सद्‌भाग्यसे दो-तीन मुमुक्षुओने यह कार्य हाथमे लिया और सम्पूर्ण ग्रन्थको यथासम्भव शुद्ध कर दिया। उसीका परिणाम है कि आज हिंदी-भाषी मुमुक्षुओके समक्ष वि० स० २००७ के आश्रम प्रकाशित गुजराती सस्करणके अनुसार ही यह द्वितीय हिन्दी सस्करण श्रीमद् राजचन्द्र आश्रमकी ओरसे प्रस्तुत हो रहा है। सन्दर्भकी दृष्टिसे दो भागके बदले एक ही भागमे ग्रन्थ मुद्रित करना योग्य लगनेसे वैसा किया है।

प्रथम सस्करणकी तरह इसमे भी मूल गुजराती काव्योके भावार्थ (छायामात्र अर्थ) पादटिप्पणीमे दिये हैं जिससे हिन्दीभाषी जिज्ञासु उन काव्योका सामान्य अर्थ समझ सके। विशेषार्थके जिज्ञासुओको "नित्यनियमादि पाठ (भावार्थ सहित)" का हिन्दी अनुवाद देखनेका अनुरोध है।

अन्तमे लिखना है कि अनुवाद अनुवाद ही होता है, वह मूलकी समानता कभी नही कर सकता। यथासम्भव शुद्ध करनेका पूरा प्रयास करने पर भी कही पर आशय-भेद (अर्थस्खलना) हुआ हो अथवा त्रुटियाँ रह गई हो तो पाठकगण हमारे ध्यानमे लानेकी कृपा करे ताकि भविष्यमे उन्हे शुद्ध किया जा सके।

ग्रथका विशेष परिचय न देकर मूल गुजराती प्रथम एवं द्वितीय सस्करणकी प्रस्तावनाओका हिन्दी-रूपान्तर ही दे दिया है जिससे ग्रन्थकर्ता, ग्रन्थका विषय तथा ग्रन्थकी संकलना एव उसका आधार इत्यादिका परिचय मिल ही जाता है।

यह आत्मश्रेयसाधक ग्रन्थ मुमुक्षुबधुओको आत्मानन्दकी साधनामे सहायक सिद्ध हो यही प्रार्थना।

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास
चैत्र वदी ५ स० २०४१

—प्रकाशक

# प्रथमावृत्तिका निवेदन

( हिन्दी-रूपान्तर )

"जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत।
समजाव्यु ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत॥" —आत्मसिद्धि, दोहा १

अहो सत्पुरुषके वचनामृत, मुद्रा और सत्समागम !
सुषुप्त चेतनको जागृत करनेवाले,
गिरती वृत्तिको स्थिर रखनेवाले,
दर्शनमात्रसे भी निर्दोष अपूर्व स्वभावके प्रेरक,
स्वरूपप्रतीति, अप्रमत्त सयम और
पूर्ण वीतराग निर्विकल्प स्वभावके कारणभूत,
अन्तमे अयोगी स्वभाव प्रगट करके,
अनत अव्याबाध स्वरूपमे स्थिति करानेवाले !
त्रिकाल जयवत रहे ! —आक ८७५

" हम ऐसा ही जानते हैं कि एक अश सातासे लेकर पूर्णकामता तककी सर्व समाधिका कारण सत्पुरुष ही है।" —आक २१३

आत्माके अस्तित्वका किसी भी प्रकारसे स्वीकार करनेवाले दर्शनोंके सभी महात्मा इस बातको मानते है कि यह जीव निजस्वरूपके अज्ञानसे, भ्रातिसे अनादिकालसे इस ससारमे भटक रहा है और अनेक प्रकारके अनत दु खोका अनुभव कर रहा है। उस जीवको किसी भी प्रकारसे निजस्वरूपका भान कराकर शुद्धस्वरूपमे स्थिति करानेवाला यदि कोई हो तो वह मात्र एक सत्पुरुष और उनकी बोधवाणी है।

जिस पुण्यश्लोक महापुरुषके आत्मोपकारकी पुनीत स्मृति श्रीमान् लघुराजस्वामीको इस श्रीमद् राजचद्र आश्रमके नामसस्करणमे हेतुभूत हुई—ऐसी समीपवर्ती परम माहात्म्यवान विभूति श्रीमद् राजचंद्र-के सर्व पारमार्थिक प्राप्त लेखोका यह सग्रह-ग्रन्थ श्रीमद् राजचंद्र आश्रमकी ओरसे प्रसिद्ध करनेकी दीर्घ-कालसेवित शुभ भावना आज साकार होनेसे हृदय आनदसे भर उठता है। सर्व साधकादिको यह अक्षरदेह आत्मश्रेय साधनाका एक सत्य साधन सिद्ध हो यही हार्दिक अभिलाषा है।

जिन महापुरुषके वचनोका यह ग्रन्थ सग्रह है, उन श्रीमद् राजचंद्र जैसे परम उत्कृष्ट कोटिके शुद्धात्माके बारेमे लिखते हुए अपनी अयोग्यताके कारण क्षोभ हुए बिना नही रहता। इस ग्रथमे सग्रहित पत्रोमे अपने अतरग अनुभव, आत्मदशा, कर्म उदयकी विचित्रतामे भी अतरग आत्मवृत्तिकी स्थिरता और अन्य अनेक गहन विषयो सबधी सहज, सरल भाववाही भाषामे उन्होंने स्वय ही अपना मथन और नवनीत प्रगट किया है। विपरीत कर्मसयोगोमेसे निज शुद्ध स्वरूपस्थितिकी ओर गमन करते हुए, अंतरमे प्रज्वलित आत्मज्योतके प्रकाशको मद न होने देते हुए, इस आत्मप्रकाशके प्रकाशसे बाह्यजीवनको उज्ज्वल